प्रथम अध्याय

"नागार्जुन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व"

अध्याय - ।

- नागार्जुन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व -

जीवनवृत्त :-

त्यागपर आधृत भारतीय संस्कृति से प्रभावित हमारे देश की महान विभूतियोंने तथा मनिषियोंने "स्व" की अपेक्षा "पर" को श्रेष्ठता दी है। जन हित की लगन से अपने प्रति उदासीन रहकर साहित्य तथा समाज सेवा में रत रहे हैं। इस उदात्त परंपराका अनुसरण करनेवाले नागार्जुन ने भी अपने जीवन की घटनाओं का विवरण अथवा आत्मकथा लिखने की आवश्यकता नहीं समझी है। हिन्दी साहित्य में "नागार्जुन" मैथिली में "यात्री", मित्र-परिवार तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओंके द्वारा "नागाबाबा", और संस्कृत में "चाणक्य" जैसे आदर सूचक नामसे पहचाने जाते हैं। लेकिन उनका सही नाम "वैद्यनाथ मिश्र" है।

अपढ़ तथा सर्वहारा परिवार के लाखों-करोंडो बच्चों की तरह नागार्जुन की जन्म-तिथि के बारे में कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। कारण बचपन में ही माँ का छत्र उठ जाना और पिताजी की लापरवाही तथा जीवन के प्रति उदासीन वृति। अतः जून, ।9।। (जेष्ठ मास की पूर्णिमा) को नागार्जुन की जन्म-तिथि मानी जाती है। स्वयं नागार्जुन भी सन् ।9।। को ही अपना जन्म मानते हैं। वे माता-पिता की पाँचवी संतान थे, लेकिन उनके चारुही भाई-बहनों का देहान्त बचपन में ही हो गया था। इस बच्चे के जीवित रहने के संदर्भ में भी चिन्ता होने के कारण ही शायद नागार्जुन की जन्म-कुण्डली तैयार करना माता-पिता को अशुभ लगी होगी।

नागार्जुन के जन्म के पहले कई दिन पिता श्री गोकुल मिश्र ने वैद्यनाथ धाम, जिला संथाल परगना में जाकर दीर्घजीवी पुत्र प्राप्ति के लिए महीनाभर व्रत किया था। इस अनुष्ठान के फलस्वरुप पुत्र प्राप्ति मानकर नाम रखा "वैद्यनाथ"। देहाती लोगों की अंधःश्रध्दा की अच्छा नाम अशुभ होगा, कोई उबाड़-खाबाड़ नाम ही ठीक रहेगा अतः 'ठक्कन' नाम रखा गया। धारणा यह थी कि यह लड़का चार

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

दिनों के बाद माँ-बाप को ठगकर चला जाएगा। लेकिन सही रुप में नागार्जुन माता-पित को न ठगकर ऐसा माननेवालों को ही ठगाते हुए अपने जीवन के आठ दशक अबाध रुप में पूरे कर गये है। बिहार का "तरौनी" गाँव नागार्जुन का पितृग्राम है। किन्तु उनका जन्म ननिहाल "सतलखा" नाम के गाँव में हुआ जो पोस्ट मधुबनी जिला दरभंगा में आता है, वह मिथिला भूखंड का ही एक अंग है। प्रथा के अनुरुप पिता के गाँव तरौनी को ही जन्म-स्थान माना जाता है।

नागार्जुन का जन्म एक सनातन धर्मी, अशिक्षित, संस्कारहीन, दरिद्र एवं गरीब मैथिली ब्राह्मण कुंटुंब में हुआ। उनका गोत्र "वत्स" है और कुल की शाखा "पलिबाड़ समौल" थी। नागार्जुन के प्रपितामह का नाम परसमणि मिश्र, पितामह का छत्रमणि मिश्र और पिता का नाम गोकुल मिश्र था। पिताजी गोकुल मिश्र लापरवाह, घमुक्कड, भंगेड़ी, रूढ़िवादी, कठोर वृत्ति के दरिद्र व्यक्ति थे। उन्होंने कभी पसिना बहाकर खेती-बाड़ी नहीं की। पिताजी की धमकियाँ, दंभ तथा माँ के प्रति बेरहमी के कारण नागार्जुण के हृदय को बचपन में ही बड़ी ठेस पहुँची थी। अतः उनके दिल में पिता के लिए श्रध्दा का भाव कम था। परिणामतः तेरह वर्ष की आयु से ही घर-परिवार के प्रति उदास हो गए। कृष्णा सोबती को दिए एक साक्षात्कार में नागार्जुन ने अपनी विरक्ति का कारण बताया है कि "पिता रतिनाथ की चाची पर आसक्त थे। रुप की पिता को इतनी ललक थी कि वे विधवा चाचो को न छोड़ सके। यह घटना मेरी विरक्ति का मूल कारण थी। मौका लगते ही घर से भाग निकला।"[1] नागार्जुन की माँ उमादेवी ईमानदार, परिश्रमी, दृढ़ चरित्र एवं ममत्वभरी सीधे-साधे ढंग की ग्रामीण महिला थी। नागार्जुन जब चार ही वर्ष के थे तब उनका देहान्त हो गया

पिताजी की भंगेड़ी तथा यायावरी वृत्ति के कारण अर्थाभाव परिवार की समस्या थी। बालक को अंग्रजी स्कूल में पढ़ाने की विवशता होने से संस्कृत की शिक्षा देना ही पिताजी का मानस था। साथ ही होशियार ब्राहमण पुत्रों को पढ़ाई के लिए पूरी छात्रवृति देनेवाले लोग भी मिथिला में काफी थें। पिताजी कहते थे कि, "सेंत-मेंत में लड़का पढ़कर तैयार हो जाएगा, अपनी तो एक कौड़ी नहीं लगेगी। उल्टे पढ़ाई के दिनों में भी चाहेगा तो हमारी मदद करता रहेगा।" अतः तरौनी के संस्कृत पाठशाला में प्राचीन पध्दति से शिक्षा का प्रारंभ किया। बादमें किसी अंग्रेजी स्कूल, कालिज या युनिवर्सिटी का मुंह नहीं देखा। तरौनी से प्रथमा परीक्षा पास कर "गनौली" के संस्कृत विद्यालय में "व्याकरण मध्यमा" पूरी की। फिर एक साल पछ्गछ्यिा (सहरसा) में और बाद में चार साल काशी और कलकत्ता में साहित्यशास्त्राचार्य की परीक्षा पास की। सन् 1930 में वाराणसी आकर जैन मुनियों के संपर्क में पालि और प्राकृत भाषा का गहराई से अध्ययन किया, यह ज्ञान आगे चलकर लंका प्रवास में काफी उपयोगी सिध्द हुआ। कोलंबो के केलानिया में "विद्यालंकार परिवेण" नामके विद्यापीठ में पालि भाषाद्वारा बौध्द

UNIVERSITY LIBRARY

धर्म-दर्शन और साहित्य का अध्ययन किया। साथ ही बौध्द संन्यासियों को संस्कृत के माध्यम से व्याकरण एवं दर्शन का अध्यापन किया। केलानिया में ही उनको अंग्रजी का भी कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करना पड़ा।

पिता गोकुलनाथ मिश्र कम पढ़े-लिखे एवं दरिद्री होने से उन्होंने बेटे को निम्न जातियोंके लोगों के साथ हँसने-बोलने या खेलने-मेलने को कभी मनाई नहीं की। बालक नागार्जुनके दिलमें निम्नवर्ग तथा किसानों के प्रति आकर्षण का बीजवपन बचपन में ही हो गया जो उनके भावी साहित्य की आधारशिला बन गई है। उन्होंने अपने बचपन में जो आपत्तियाँ झेली, सामाजिक विषमता और भेदभाव को देखा-परखा-भोगा, इनका ही सम्मिलीत प्रभाव उनके व्यक्तित्व में परिलक्षित होता है। वैसे तो शिक्षा और व्यक्तित्व का संस्करण जीवन के विस्तृत अनुभव की पाठशाला में ही हो गया। "इसलिए तो गरीबी, कुसंस्कार और रुढ़िग्रस्त पंडिताऊ परिवेश नागार्जुन को "लील नहीं पाए" नहीं तो वे वही चुटन्ना और जनेऊ वाले पंडित होते। और न पुरानी परिधि से बाहर निकलते, ---- न इस तरह का युग का साथ दे पाते।"[2] वाराणसी में पढ़ाई करते वक्त नागार्जुन ने अपने प्रथम काव्यगुरु श्री अनिरुध्द मिश्र से प्रभावित होकर काव्य लेखन का प्रारंभ किया। वहाँ ही कविरत्न सीताराम झा से पहचान होने के कारण अलंकार, भाषा, छंद आदि का गहरा ज्ञान प्राप्त हो गया। यहीं रहकर उन्होंने बौध्द धर्म के समतावाले सिध्दान्त का भी ज्ञान प्राप्त किया।

शिक्षा-दीक्षा के बाद उन्नीस वर्ष की उम्र में सन् 1931 में नागार्जुन का विवाह अपराजिता देवी के साथ हुआ और गौना सन् 1934 में हुआ। वे पत्नी को प्यार से "अपू" कहकर पुकारते थे कि "क्या बात कहती हो अपू, तुम तो मेरी सहधर्मिणी हो, ठेठ सनातन अर्धांगिनी श्रीमती अपराजिता देवी। हमारी अपनी देहाती जायदाद और घर-आँगन की मालकिन।"[3] पत्नी के प्रति हमेशा दिलमें सहानुभूति और करुणा होते हुए भी अपनी घुमक्कड़ प्रवृति के कारण उन्हें उचित स्नेह नहीं दे सके। वे घर में लगातार तीन-चार महिने से अधिक काल नहीं टिकते थे; अतः गृहस्थी का भार संभालने में पत्नी को हाथ नहीं दे सके। उनके संबंधी, मित्र, कुंटुम्बिय और ग्रामीण लोग तो उन्हें कुंटुम्ब-कबिलावाला न मानकर सन्यासी ही मानते है। नागार्जुन को शोभाकांत, सुकांत, श्रीकांत और श्यामकांत नाम के चार पूत्र और उर्मिला तथा मंजू नामक दो पूत्रियाँ हैं। पिताजी की उपेक्षा और अर्थाभाव के कारण बच्चे उचित तथा उच्च शिक्षा नहीं पा सके है। नागार्जुन का अपने देहात में छोटा-सा मकान और थोड़ी-सी खेती है। जिसमें पिताजी और उन्होंने कोई भी विस्तार या परिवर्तन नहीं किया है। जमीन की थोड़ी-सी उपज और प्रकाशक से मिलनेवाली थोड़ी "रायल्टी" ही उनकी जीविका रही है। आमदानी का प्रमुख साधन "कलम घिसाई" ही होने से घर में हमेशा "लूट लाओ और कूट खाओ" की हालत बनी रही है।

संप्रत गाँव का खपरैल का घर भी मरम्मत के अभाव में खंडहर बन गया है, जमीन की सीमा-सरहद भी पड़ोसियों द्वारा नोंची गयी है। अन्न, वस्त्र और निवास के कष्ट में परिवार के दिन बित गए हैं।

नागार्जुन सन् 1934 में घर छोड़कर भारत के विभिन्न प्रान्तों याने पंजाब, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान,काठियवाड़ आदि प्रदेशों में घुमते रहे। इस यात्रा में देहाती लोगों के घनिष्ट संपर्क में आने से निम्नवर्गों की हालत का सूक्ष्म अवलोकन किया। उन्होंने देखा कि किसान जमींदारो के शोषण का शिकार बना है, गरीबों से जोर-जुल्म से सेवा ली जाती है; उनका जीवन ही अमीरों की कृपा पर आश्रित है। भ्रष्टाचार, मजबूरी और रुढ़िवाद के कारण समाज का व्यापक हिस्सा कुंठा और घुटन से भरा है। इस विदारक कटू सत्यने ही नागार्जुन को भविष्य में शक्तिशाली व्यंग्यकार बना दिया है। इस भटकन्ती में नागार्जुन 1936 के अन्त में सिंहलद्वीप (लंका) पहुँचे। वहाँ बौध्द धर्म की दीक्षा लेकर चीवर परिधानकर बौध्द भिक्खु बने। लंका निवास में वहाँ की "समसमाज पार्टी" के क्रान्तिकारी नेता के संपर्क में आने से साम्यवाद और समाजवाद से परिचित होकर उनका दयालु मन वामपंथ की ओर झुक गया। और लंका से ही भारतीय किसान आन्दोलन के नेता स्वामी सहजानंद से पत्र-व्यवहार द्वारा घनिष्ट संपर्क में आ गए।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन की प्रेरणा से बिहार सरकार ने सन् 1938 में नागार्जुन को अनुसंधान कार्य के लिए तिब्बत में जानेवाले मंडल में प्रतिनिधि के रुपमें लाहसा भेजने का निर्णय लिया। राहुल जी की आज्ञा और आशीर्वाद से हिन्दूस्तान लौट आए और तिब्बत की यात्रा के लिए चल पड़े। लेकिन दुर्भाग्य से रास्ते में ही घोड़े से पड़कर जख्मी हो गए अतः यात्रा का मनोरथ अधुरा छोड़कर नाराज होकर वापस वाराणसी आए। वाराणसी आते ही राजनीतिक आंदोलन में सक्रिय भाग लेकर राजनीतिक जीवन का श्रीगेणेश किया। स्वामीजी ने कहा कि "अतीत के बील में घुसे बैठे हो, वर्तमान संघर्ष के खुले मैदान में आओ। उनके संपर्क में आकर नागर्जुन को और बल मिला। नागार्जुन को राजनीति की प्रारंभिक दीक्षा स्वामी सहजानन्द से मिली थी।"[4] बिहार में उस वक्त किसान आन्दोलन का नेतृत्व करनेवाले राहुलजी को अंग्रेज सरकारने गिरफ्तार करने से आन्दोलन का नेतृत्व नागार्जुन ने संभाला। फलतः उन्हें भी गिरफ्तार कर दस महिने के कारावास की सजा होने से छपरा तथा हजारीबाग जेल में भेज दिया। जेल से रिहाई के बाद स्वामी सहजानंद सरस्वती के साथ किसान सभा का कार्य करना स्वीकृत किया। उनका नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के साथ भी पत्रोंद्वारा संपर्क रहा था। उन्होंने जयप्रकाश नारायण द्वारा आयोजित "समर स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स" में भी भाग लिया था।

सन् 1940 में किसान आन्दोलन का नेतृत्व करना और फारवर्ड ब्लाक द्वारा युध्द विरोधी गुप्त रुपमें परिपत्र छपवाने के इल्जाम में दूबारा आठ मास की सजा होने से भागलपुर जेल में भेज दिए

गए। किसान आन्दोलन के संदर्भ में स्वयंसेवकों के शिबिर आयोजित करना, प्रचार साहित्य की तैयारी, कार्यकर्ता के रोजी-रोटी की व्यवस्था करना, संघर्ष की दिशा तय करना आदि काम नागार्जुन ने भिक्खु होकर भी सफलता से किये। जेल में किसान सभा के नेता पंडित कार्यानन्द शर्मा और समाजवादी नेता पंडित श्यामनंदन मिश्र के साथ घनिष्ट पहचान होने से साम्यवादी एवं समाजवादी विचारधारा से परिचित हो गये। भागलपुर जेल में सजा काट रहे थे तो उनके पिता मिलने आए। पिताजी ने जेलर को रोते-रोते कहा था - "यह लड़का वर्षों से भागा हुआ है। बुढ़ापे में हमें तो सता ही रहा है पर एक "बछिया" की पीठ में छुरा घोंप कर बाबाजी बना घूमता है। इस कसाई को जब आप जेल से रिहा करने वाले हों तब तार देकर मुझे बुलवा लेंगे। हम चार जने मिलकर आयेंगे और इसे पकड़कर घर ले जायेंगे।"[5]

सन् 1941 ई. में जेल से छूटने के बाद पिताजी के आग्रह से माथे में मार्क्सवादी विचारों का तुफान और दिल में सर्वहारा वर्ग के प्रति हमदर्दी लेकर गाँव आ गए। जेल से छुटकर नागार्जुन ने अपना चीवर और कमण्डल सीताराम आश्रम के हवाले किया जो आज भी वहाँ सुरक्षित रखा हैं। ससुरालवालों ने उनका स्वागत किया और घर से बाहर जाने की आज्ञा न देकर सदा साथ रहने लगे। उधर खुफ़िया पुलिस भी उन पर लगी रहती। लेकिन सन्यासी नागार्जुन का लंका की समुद्र यात्रा से गृहस्थाश्रम लौटना तरौनी के अंधविश्वासी, परंपरावादी पंडितों को बर्दाश्त नही हो सका। उनका कहना था कि "एक तो सन्यास से वापस आया और दूसरा समुद्र पार गया, तीसरी बात कि बौध्दधर्म में दीक्षित हुआ। बौध्द तो आधा मुसलमान होता है - आधा ईसाई। वे गाय भी खाते हैं और सुअर भी। यह लड़का ब्राहमणों के समाज में फिर से वापस लिया ही नहीं जा सकता।"[6] लेकिन उनके वापसी का युवकों ने जोरदार समर्थन किया। युवकों के प्रति यही विश्वास नागार्जुन की रचनाओं में चेतना का आधार बन गया है।

घर वापस आने से पिता को आनंद के साथ दु:ख भी हो गया था; कारण वे सोचते थे कि जेल होकर आया है, तो कहीं नौकरी नही मिलेगी। उदर-निर्वाह के प्रश्न को हल करने के लिए नागार्जुन ने मैथिली में कविताएँ लिख-छपवाकर रेल यात्रियों को घुम-घमुकर बेचना शुरू किया। बिहार में नौकरी मिलना मुश्कील है यह जानकर पत्नी को साथ लेकर पंजाब में लुधियाना आ गये। वहाँ जैन मुनि उपाध्याय आत्मारामजी ने अपने साहित्यिक काम-काज के लिए नियुक्त कर लिया। स्वतंत्र प्रकृति और घुमने की आदत होने से वेतन के लिए बंधन में रहना मुश्कील हो गया था। इसी वर्ष सन् 1943 में पिता का स्वर्गवास होने से छ: मास में ही घर लौट आए। जमीन की अल्प उपज और अनुवाद से जो थोड़ा धन मिलता था उससे परिवार का निर्वाह करना कठिन होने से इलाहाबाद में आकर हिन्दी और मैथिली में लिखाना प्रारंभ किया। साथ ही शरतचंद्र और के.एम्. मुन्सी की कृतियों का अनुवाद भी किया। उन्होंने सन् 1946 में मैथिली में "पारो" उपन्यास लिखकर औपन्यासिक क्षेत्र में प्रवेश किया।

परिवार का भार पत्नी अपराजिता देवी पर सौंपकर स्वयं दिल्ली, पटना, कलकत्ता और इलाहाबाद घुमते हुए साहित्य सेवा में रत रहे। सन् 1948 में गांधीजी की हत्या से आहत होकर "शपथ" कविता लिखने से उन्हें कारावास जाना पड़ा और कविता भी सरकार द्वारा जब्त की गयी। सन् 1949 में वर्धा आकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कार्य में लगे। सन् 1952-53 में इलाहाबाद में "यात्री" नामक प्रकाशन शुरु कर "युगधारा" काव्य का प्रकाशन किया। इस प्रकाशन को कलकत्ता ले जाकर "सतरंगे पंखों वाली" काव्य का प्रकाशन किया। साम्यवाद के प्रबल समर्थक नागार्जुन ने सन् 1962 के चीनी आक्रमण से क्षुब्ध होकर चीनी नेताओं की कड़ी नींदा की। उनके मैथिली काव्य-संकलन "पत्रहीन नग्न गाछ" पर सन् 1969 का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। तिब्बत यात्रा में असफल रहे कवि नागार्जुन सन् 1971 में रूस-यात्रा कर आये हैं। सन् 1975 में जननायक जयप्रकाशजी के नेतृत्व में संचलित "संपूर्ण क्रान्ति" आन्दोलन के समर्थन में नुक्कडोंपर काव्य-पाठ करने के कारण तत्कालीन कॉंग्रेस सरकार द्वारा गिरफ्तार करने से नागार्जुन को 5 जून, 1975 से 16 अप्रैल, 1976 तक कारावास में रहना पड़ा।

साम्प्रति उनका जन संपर्क इतना है कि राजकीय क्षेत्र का कोई भी पद हासिल कर सकते हैं। लेकिन सर्वहारा वर्ग का हित चाहनेवाले इस संवेदनशील मनिषी को आजकी राजनिति से नफरत हो गयी है। लेखन-जीवी होने से जो कुछ मिलता है उसे लेकर अपनी मौलिक रचनाएँ प्रकाशक के हाथ सौंपते हैं। छल-प्रपंच की कूट राजनीति से परे, साहित्यिक दल-बन्दियोंसे कोसों दूर रहकर अपना साहित्य संसार समृध्द कर रहे है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी नागार्जुन संस्कृत, पालि, पाकृत, मैथिली और हिन्दी भाषा के ज्ञानी तथा बहुभाषिक रचनाकार है। उनके जीवन और विचारोंपर समयानुरुप वामपंथी साम्यवाद, समाजवाद का प्रभाव दिखाई देता हैं। भारतीय संस्कृति और प्रकृति के प्रति स्वाभिमानी इस धरतीपूत्र पर अंग्रेजी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का कोई प्रभाव नहीं है। स्वयं अभावों का आसव पान करने के कारण उनके दिल में किसान-मजदूरों के प्रति आत्मप्रेरित तथा स्वानुभवजन्य सहानुभूति हैं। जीवन प्रवाह में अनेक समस्याओं तथा विफलताओं के साथ संघर्ष करते हुए अपने मंजिल की ओर अग्रसर रहनेवाले जिजीविषु नागार्जुन सन्यस्त वृत्ति के अवधूत ही है।

नागार्जुन : व्यक्तित्व :

"व्यक्तित्व" शब्द हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी के "पर्सनेलिटी" शब्द का पर्यायवाची माना गया है। लैटिन भाषा के "पर्सोना" शब्द से "पर्सनेलिटी" की उत्पति मानी जाती है। "पर्सोना" शब्द का प्रयोग मूलतः नाटक में पात्रोंद्वारा धारण किए नकली चेहरों के लिए होता था। व्यक्तित्व का तात्पर्य

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

व्यक्तिका बाहयाकार एवं अंतर्मन की वृत्तियों से हैं। जिसमें व्यक्तिका सोचना, लिखना, जीवन-यापन का तरीका, रहन-सहन, मनोवृत्तियाँ तथा आदतें, संस्कार, शारीरिक ढाँचा और वेशभूषा आदि व्यक्ति के गुणों का समावेश होता हैं। व्यक्तित्व के बारेमें बाबूराम गुप्त की राय है कि "व्यक्तित्व एक ऐसा विशिष्ट ढाँचा है, जो एक व्यक्ति को किसी भी अन्य व्यक्तियों से अलग करता है। व्यक्तित्व शारीरिक एवं मानसिक प्रवृत्तियों का समुच्चय है।"[7] हमारी राय से व्यक्तित्व वह इकाई है जिसके द्वारा एखाद व्यक्तिका परिचय किया जाता है अथवा व्यक्तिको पहचाना जाता है। व्यक्तिका समग्र परिचय होने के लिए उसके व्यक्तित्व को बाहय और आंतरिक रुपों में विभाजित करना उचित एवं आवश्यक लगता है। यहाँ हम नागर्जुन के व्यक्तित्व का परिचय भी बाहय और आंतरिक रुपों में करना मुनासिब समझतें हैं।

नागार्जुन का व्यक्तित्व : बाहय पक्ष :

व्यक्तित्व के इस पक्ष में व्यक्ति की शारीरिक बनावट, रुप-रंग, वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, व्यवसाय तथा स्वास्थ्य आदि बातों का अंर्तभाव होता है।

नागार्जुन का व्यक्तित्व सीधा-सादा होने से उनका रहन-सहन बहुत साधारण था। गरीब ब्राह्मण परिवार में अभावग्रस्तता का निम्न-मध्यमवर्गीय जीवन बितानोवाले नागार्जुन शरीर से दुबले-पतले है। मोटे खद्दर का कुर्ता, पाजामा, मझौला कद, आँखों पर ऐनक, पैरों में चप्पलें और चेहरे पर सदा उत्साह यह साधारण रुप हमेशा दिखाई देता हैं। अपने पुत्र शोभाकान्त को उन्होंने एक बार कहा था - "कभी भी अपनी तुलना उपरी वर्ग से मत करो ---- नीचे देखो तब समझ में आएगा कि जीवन क्या है। तुम से ऊपर वालों की संख्या सीमित है और नीचे वालों की गिनती नहीं कर पाओगे ---- ऊपर देखने से असंतोष बढ़ेगा --- नीचे देखने से जीने के लिए राह खोजने में मदद मिलेगी। तुम्हें तो किसी तरह दोनों समय रुखा-सूखा खाना मिलता है, अपने आस-पास देखो कितने ऐसे लोग हैं जिन्हें दो-दो दिनों तक अन्न देखने तक को नहीं मिलता है।"[8] इस संसार में जो सब से अधिक पीड़ित और प्रताड़ित है, दु:ख और दर्द से आक्रान्त है, उनका पक्षधर होनेसे ही शायद उन्हें सादगी में स्वाभिमान लगता है। अत: उन्होंने श्रमिक वर्ग, किसान-मजदूर को अपनी चेतना का आधार बनाकर उनके साथ सहजता और अपनेपन का नाता तय किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व के धनी नागार्जुन की वेश-भूषा भी साधारण तथा प्राकृतिक है कि अपने दाढ़ी-बाल की भी कभी परवाह नहीं की। नियमित हजामत नहीं, बेतरतीब से बिखरे बालों को सजाने-सँवारने के लिए पास कभी आइना-कंघी नहीं रखते थे। अब तो दाढ़ी ही रखने लगे है। कपड़ो के बारे में भी वे बेफिक्र ही रहे है। सफेद खादी का कुर्ता और धोती, लुंगी,धुला पाजामा, मौजा-जूता और एखाध अंगोछा ही उनका वस्त्र भांडार था। अंगोछे को गर्मी में सिर पर रखते, जाड़े में सिर से गले तक

लपेट लेते, हात-मुँह पोंछने के लिए तो कभी राह में बिछाकर बैठने-सोने के लिए प्रयोग करते। घूंमतू तबीयत के होने से जाड़े में कोट-पैंट या अलीगढ़ी पतलूननुमा पाजामा चलता था। कपड़े को कभी इस्त्री नही करेंगे लेकिन साफ-सूथरा रखने में सजग रहते है। वे कहते है "फटा कपड़ा पहनने से कुछ बनता बिगड़ता नहीं है, गन्दा मत पहनो।"[9] इस सादगी में भी चेहरे पर सहज-सरलता, निरीहता के भाव सदा ही मौजूद दिखाई देते हैं।

दुबले-पतले शरीर पर 1948 ई. से दमे ने जो हमला किया है, वह आजीवन साथी बनकर रह गया है। डॉक्टरी उपचार की लम्बी प्रक्रिया और अनेक प्रकारके टेबलेटस् से चिढ़ होने से दमा का इलाज कभी लगातार नहीं किया। उबाला पानी और अमरुद खाना, रात का भोजन न खाना और मिताहार से ही दमा का इलाज करते रहे हैं। परवल, लौकी, भिंडी, पालक आदि प्रिय तरकारियाँ हैं। लेकिन मिर्च-मसाले से परहेज रखते है। पर चावल, मछ्ली और आम के आचार एवं चटनी के प्रेमी है। मौसम के अनुरुप खीरा-ककड़ी, आमरुद, आम और सेब का भी आहार की तरह प्रयोग करते हैं। शायद नागार्जुन पूर्णतः स्वस्थ रहना भी नहीं चाहते। वे कहा करते हैं - "बुढापें में स्वास्थ ज्यादा अच्छा नहीं होना चाहिए। यदि अधिक उम्र में स्वास्थ्य अच्छा रहेगा तो व्यक्ति परिवार और समाज को परेशान करेगा।" थोड़े अस्वस्थ रहने में उन्हें सुख का अनुभव होता था।

अभी पन्द्रह-बीस सालसे "इनो" की भी आदत लगी है। नशा-पान कुछ नहीं लेकिन पान, जर्दा, तम्बाकू खाना और नस सुंघना आदि कभी-कभार करते हैं। चाय मिले तो आनंद से लेते है और न मिले तो भी प्रसन्न रहते है। नींबू वाली चाय अधिक पसन्द करते है। शराब से परहेज होते हुए भी मित्र-मण्डली के खातिर दो-तीन चम्मच काफी पानी डालकर लेते हैं। सौंफ-लौंग सदाही पास रखते हैं। सिगरेट पहले कभी पिते थे अब दमा के कारण छूते तक नहीं। दूसरों के खान-पान के मामले में किसी तरह की दखल नहीं लेते। सोते वक्त कान से सटाकर रेडिओ सुनने की आदत है। फिर चाहे जो स्टेशन और चाहे जिस भाषा का कार्यक्रम हो, बहुभाषी होने से कोई भी कार्यक्रम अखरता नहीं है।

बुढ़ापे के कारण रात में दस-साढ़े दस के दरम्यान नींद हो या न हो बिस्तरपर चले जाते है। रात के दो-तीन बजे नींद खुलती है तबसे सुबह पांच-छह बजे तक लिखते-पढ़ते रहते है। संस्कृत के क्लासिकल ग्रंथों का और अत्याधुनिक युगीन ग्रन्थों का अध्ययन एवं पारायण रुचि से करते हैं। रात में कम नींद लगने के कारण महत्वपूर्ण काम भी क्यों न हो दिन में दो घंटे नियमित रुप में आराम लेते है।

नागार्जुन ने जिन्दगी को एक सफर का ही रुप दिया था। उनकी यायावरी तथा जीवन

पुर्वनियोजित तथा व्यवस्थित नहीं था। दिमाग में घुमक्कड़ी का विचार आते ही पांव में खुजलाहट होती है, याने कि उनके पैरों में शनि है। तुरन्त ही थैला सहेजकर किसी भी नगर का टिकट लेकर चल पडते है। इस भिक्खु "बाबा" के थैले में एक टार्च, छोटा ट्रांजिस्टर, एक अंगोछा, एक पाजामा, एकाध डायरी, पत्र-पत्रिकाएँ, औषधी गोलियाँ तथा इनो की शीशी आदि सामग्री होती हैं। चाहे काफी हाऊस हो, चाहे मित्र की बैठक में हो, चाहे कवि सम्मलेन के मंच पर हो चाहे राह में हो यह थैला उनके कंधे को लटकता ही रहता था। इसे हम उनके व्यक्तित्व की विलक्षणता ही कहेंगे। उनका बयान है - "मैं साधारण हूँ, अपने को साधारण ही कहलवाना पसन्द करता हूँ। मैं तथाकथित विशिष्ट लेखकों की जमात में नही हूँ। सामान्य की कोशिश मेरी हड्डियों तक में रची-बसी है।"[10] आजन्म प्रवासी नागार्जुन किसी एक जगह पर टिककर नहीं रह सकते। उनका कोई ठौर-ठिकाना न होने से किसी का भी घर उनका अपना है। अपने परिचित परिवारों की महिलाओं से घरवालों की तरह घुल मिल जाते थे। चौंके में जाकर उनके साथ सुख-दुःख की बातें करने का अधिकार पाया था। यह महिलाएँ अपने मन की बातें करने में सकोचती नहीं थी, उनके पसन्द की चिज बनाकर खाने के लिए देती थी।

निष्कर्ष रुप में हम कह सकते है कि नागार्जुन के व्यक्तित्व का बाहय पक्ष उनके विलक्षण आन्तरिक व्यक्तित्व के समान ही असाधारण है। उन्होंने जन जीवन का व्यापक सर्वेक्षण कर लोक जीवन का विपूल ज्ञान प्राप्त किया है। और उनके साथ आत्मिक तथा विश्वासका रिश्ता जोड़ा है। नागार्जुन के रुप-रंग को देखते ही लगता है कि एक निर्लिप्त औलिया साधारण लोगों के कल्याण के लिए अवतरित हुआ है।

नागार्जुन का व्यक्तित्व : आन्तरिक पक्ष :

व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष में व्यक्तिके गुण, स्वभाव, रुचि, प्रतिभा, जीवन मूल्य, क्रियाकलाप, नैतिकता और मानसिक उथल-पुथल का समावेश होता हैं।

नागार्जुन के व्यक्तित्व के आंतरिक अंग पर उनके परिवारिक तथा सामाजिक परिवेश का परिणाम दृष्टिगोचर होता है। निम्नवित्तिय ब्राह्मण परिवार में जन्म होने से बचपन से अभावग्रस्त तथा रुढ़िग्रस्त होने से इस शलाका पुरुष में आक्रोश और क्षोभ, वेदना और करुणा के भाव स्थिर हो गए हैं। जर्जर वर्तमान समाज व्यवस्था के प्रति घृणा कर चोट करनेवाले इस निर्भीक ओर बेलाग-चिरयात्री फकीर ने कलम को ही अपना हल और कुदाल बनाकर पीड़ा को वाणी दी है। मनही मन कबीर और निराला को काव्यगुरु माननेवाले नागार्जुन का जीवन और व्यक्तित्व एक खुली किताब है। जिंदगीभर आर्थिक अभावों से जूझने वाले इस फकीर में कंजूसी नही थी, वे खुले हाथ से खर्चीले रहे है। जून 1982 से जून 1983 तक उन्हें दस और पन्द्रह हजार के दो पुरस्कार मिले। उससे न तो घर बनवाया न रुपये

बैंक में रखे। बच्चों को हजार-पन्द्रह सौं दिए और बाकी के इधर-उधर उड़ाकर फिर प्रकाशक के पीछे लखड़ा लगाते रहे। प्रकाशक में और उनमें बार-बार झगड़े और समझौता होता आया है।

संवेदनशील एवं भावूक होने से परिवार के एक-एक सदस्य की चिन्ता करते हुए अपने सामर्थ्य के अनुसार ढ़लती उम्र में भी मदद करते रहे हैं। पत्नी के कष्ट को कम करने के लिए उसे अनेक शहरों में रखने का प्रयत्न किया। स्वयं रुढ़ि भंजक होते हुए भी पत्नी के व्रत-त्यौहार, पूजा-पाठ में रुकावट नहीं ड़ाली कारण वे स्त्री स्वातंत्र्य के पक्षपाती है। छह-छह सालोंतक प्रवासी रहते हुए भी व्यावहारिक विवेकी होने से पत्नी से संबंध विच्छेद के विचार ने कभी छूआ तक नहीं। उन्होंने अपने सन्तानों को भी कड़े अनुशासन में नहीं रखा। अपनी बिटियाँ उर्मिला और मंजू से उनके दिल में जितना आदर-स्नेह था उतना ही पुत्र-वधू रेखा, ललिता और सरिता के लिए भी था। वे बच्चों से बच्चे की तरह बातें करने में कुशल थे। बच्चों के साथ वार्तालाप में "वय" का प्रश्न बीच में नहीं आता। अपनी दाढ़ी, चश्मा, कलम या पाकेट रेडिओ को बच्चों का खिलौना बनते देखकर सुख का अनुभव करते थे।

नागार्जुन का गुस्सा अल्प काल याने बीस-पचीस मिनट का होता है। गुस्से में ऐसा रौद्र रुप धारण करते है कि किसी की कुछ नही सुनते। थोड़े क्षण में जिस पर डाँट-फटकार पड़ी है उसे ही साथ लेकर चाय-पान या खाना खाने के लिए चले जाएँगे। चलते-चलते अपने गुस्से का कारण भी खुले दिल से प्रकट करने की आदत है उनकी। इस अजनबी ने कभी किसी का मानसिक या आर्थिक बन्धन स्वीकारा नहीं। नौकरी में या पत्रों के कॉलन लिखते वक्त बन्धन महसूस होते ही उस से मुक्त हो गए है। याने मनका कहना था करने में बाधा तथा बंधन बर्दाश्त नही कर सकते थे। उनका हृदय अन्यायी बंधन, अत्याचार देखकर क्षुब्ध हो उठता था।

नागार्जुन में ज्ञानलालसा इतनी जबरदस्त है कि संस्कृत तथा आधुनिक ग्रंथो के अध्ययन के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं का पारायण करना भी उनका नित्य कार्यक्रम था। हिन्दी, अँग्रेजी, बंगला, मराठी भाषाओंके राजनैतिक और साहित्यिक पत्रों को खरीदकर पढ़ने के शौकीन रहे हैं। कभी-कभी यात्रा में अगल-बगल बैठे यात्रियों की बेतमतलबी बातों से बचने के लिए उसकी चाव के अनुरुप पत्र स्वयं खरीदकर उसे पढ़ने देने की अजब नीति नागार्जुन की थी। "ऐसी ज्ञान-साधना एक छियासठ वर्ष से शरीरसे रोगग्रस्त और निरन्तर चिन्ताकुल व्यक्ति में दुर्लभ पाई जाती है। उनकी जीवट अद्भूत है।"[11] राहुल जी के छोटे गुरुभाई नागार्जुन को अनेक भाषाएँ आती हैं। लेकिन उन्होंने अपनी विद्वता और बहुभाषित्व का कभी विज्ञापन नहीं किया है। अभी भी उनका मन स्थिर नहीं हो पाया है। जितना पढ़ा है उससे आगे की जानकारी प्राप्त करने के लिए तीव्र जिज्ञासा जाग उठती है। नये रचनाकारों की रचनाएँ चाव से पढ़कर उन्हें पत्र लिखकर प्रेरणा देने में कभी आलस्य नही किया। फलतः युवावर्ग उन्हें हमेशा चाहता

रहा है और वे भी अपनी उम्र भूलकर उनके साथ तल्लीन हो जाते है।

नागार्जुन को एकान्त प्रिय लगता है; संभवतः वे अपने को पब्लिक से बचाने का प्रयत्न करते है। उन्हें आत्मप्रशंसा पसंद नहीं है। साहित्य संमेलनों तथा शिविरों में अवश्य जाते है लेकिन साक्षात्कार देने से दूर रहते है। उन्हें राजनीति और राजनीतिक नेताओं से नफरत हो गयी है। उन्हें सभी राजनीतिक नेता झूठे और ढोंगी दिखाई देते है। उनका हस्ताक्षर सुन्दर था। हस्ताक्षर को देखकर ही कलकत्ता के संस्कृत कालेज के प्राचार्य एस्.एन्. दासगुप्ता ने उन्हें अपने कालेज में प्राकृत का विशेष अध्ययन करने के लिए एडमीशन दिया था।

नागार्जुन निर्लोभी होने से धन-संपदा तथा पुरस्कार को कभी महत्व नहीं दिया। उन्होंने बिहार सरकार से मिलनेवाली तीन सौं रूपये की मासिक वृत्ति ठुकरा दी थी। किसी लाभ के लिए पालतू बनकर रहना उन्हें पसंद नहीं था। वे कहते थे कि "मुझे कोई राजकीय सम्मान मिलता है, तो मेरी आत्मा मुझे धिक्कारने लगती है। मैं सोचने लगता हूँ कि मैंने ऐसा कौनसा पाप किया है कि मुझे उसका दण्ड मिल रहा है। मैं तो राजाओं का, शासनों का विरोधी रहकर ही सुखी रह सकता हूँ।"[12] उन्होंने पुरस्कार आदि पाकर अपने कलम की तीव्र धार को कुंठित नहीं होने दिया। सन् 1977 में बिहार सरकार के द्वारा सौंपा हिन्दी - मैथिली विषयक कोई काम थोड़े ही दिनों में छोड़ दिया। कारण वेतन भोगी बनना उनकी वृत्ति ही नहीं थी।

नागार्जुन का स्वभाव मुँहफट और अक्खड़ होने से गलत कार्मों के लिए सबको फटकारते थे। स्पष्टवक्ता होने के कारण खरी-खोटी सुना देना उनका जन्मजात गुण ही है। बेलौस बाते उनके खुले मन-मस्तिष्क की पहचान ही है। वे इतने जिद्दी है कि जन्मजात अभाव, असह्य पारिवारिक यातनाएँ और संघर्ष की प्रतिकूल परिस्थितियों के सामने पराजित होना कभी स्वीकार नहीं करते। चंचलवृत्ति और बेफिक्र होने से आर्थिक दुरावस्था थी, लेकिन स्वाभिमानी इतने है कि पैसों के लिए किसी के सामने याचना नहीं की। निर्धन व्यक्ति के प्रति आत्मीयता होने से उनके बीच सहज और सुखी रहते थे। प्रायः धनियों के घर जाना टालते ही रहते है।

आडम्बर से नफरत करनेवाले नागार्जुन स्वभाव से विद्रोही है। विद्रोही वृत्ति की नींव उनके छात्र जीवन से ही दिखाई देती है। काशी में जिस छात्रावास में रहते थे उसकी पहली मंजिल की धर्मशाला में किसी बुढ़िया की लाश थी। उस लाश को मणकर्णिका घाट पर ले गए और अपने हाथों उस बुढ़िया की अन्तिम क्रिया की। भावी जीवन में विद्रोह उनके पीड़ायुक्त और अपमानित परिवेश की देन है। वे मानसिक उदासी तथा क्रोध के क्षणों में मनोरंजन को महत्व देते है। एक हात पर दूसरा हाथ मारकर जोर से हँसने की और नंगे पाँव घास पर चलने की उनकी आदत है।

लापरवाह और अस्ताव्यस्तता नागार्जुन के व्यक्तित्व की खुबी है। उनकी किताबें और सामान एक जगह नहीं होता। वे अपनी वस्तुएँ किसी के घर रखी है यह भूल जाते है यदि याद है तो भी वे उस घर तक दुबारा नहीं जाते। लिखकर रखना और भूल जाना उनकी आदत थी। भविष्य के कामकाज के बारे में कोई नियोजन उन्होंने कभी नहीं किया है। उनके लिखने की कोई खास टेबिल नहीं और न रचनाओं की कोई फाईल है।

निष्कर्षतः हम कहते हैं कि नागार्जुन सबल व्यक्तित्व के धनी है। सदा घुमना, ज्यादा पत्र-व्यवहार, सूक्ष्म अध्ययन, आर्थिक अस्थिरता और संवेदनशील होने से चंचल ही लगते हैं। जाति-पाति के भेदभाव को विरोध और रूढ़ितोड़क वृत्ति इस दुबले-पतले लेकिन साहसी व्यक्ति में बचपन से ही निर्माण हो गयी थी। वे परिस्थितियों से प्रभावित होते रहे है लेकिन परिस्थितियों को भी परिवर्तित कर उसे इच्छानुरूप आकार देने में कामयाब हो गए है। जिन्दगीभर उनके प्रखर विचारों में और बाहय वेश-भूषा में परिवर्तन नहीं हुआ है, यह उनके प्रामाणिकता और खरेपन की निशानी है।

नागार्जुन : साहित्यिक व्यक्तित्व :-

नागार्जुन के साहित्य का संसार वास्तविक रूप में सर्वहाराओं का संसार है। वे अपने साहित्य के द्वारा पुरानी दुनिया को बदलकर नये ढंग से संगठित और विकसीत करना चाहते है। वे सामाजिक परिवर्तन की अपनी सफलता के लिए युवा पीढ़ी पर भरोसा कर उन्हें ही जाग्रत करते हैं। नागार्जुन गाँव में पैदा हुए हैं और उनका गाँव की भोली-भाली जनता से हार्दिक प्रेम संबंध रहा है। जन आन्दोलन में खड़े रहनेवाले नागार्जुन वामपंथ की ओर झुककर राष्ट्रीय और सामाजिक परिवर्तन की चर्चा कर श्रम और सामूहिक संघर्ष का समर्थन करते है। गाँव और शहरों का निम्न-मध्यम वर्गीय जीवन ही कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल करनेवाले नागार्जुन का पढ़ी और सुनी दुनियापर भरोसा नहीं। वे आँखों देखी-भोगी दुनिया के लेखक है। उनकी पक्षधरता किसी दल विशेष के साथ न होकर आम व्यक्ति के साथ है। जनता का साथ देते वक्त उन्होंने दोस्त या दल नहीं देखा हैं। वफादारी केवल जनता की ही संभाली है। वे दल विशेष की जात पूछने के बजाय उसका काम देखते है। जनता ही उनकी माँ-बाँप है, वही उनका ईश्वर भी।

नागार्जुन की देशभक्ति वाचिक नहीं तो चिन्तनपरक है। उनके दिल में शोषक समाज के प्रति क्रोध है। अगर "नागार्जुन की आधी ताकत कोप और अभिशाप को व्यक्त करने में न खर्च हो पाती तो शायद हम हिन्दी में अपना कालिदास नागार्जुन के रूप में पा लेते।"[13] नागार्जुन सामाजिक सहानुभूति और पाठक की आत्मीयता प्राप्त करने में सफल हुए कलाकार है। उन्होंने मार्क्सवाद को राष्ट्रीय और सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप परिवर्तित किया है अतः उनकी दृष्टि एकांगी नहीं। वे

नारी के आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता के हिमायती हे और यह स्वतंत्रता नारी अपने सामर्थ्य से प्राप्त करेगी . यह उनका आशावाद है। वे क्रान्ति के लिए किसी सुधारक तथा अवतारी पुरुष की राह नहीं देखते, उनके पात्र ही अपनी लढ़ाई लड़ने वाले हैं। उनके पास बाधाओं से जूझनेवाली सेना हैं, आवश्यकता सिर्फ उन्हें संगठित करने की है। उनका साहित्य याने श्रमिक जनता की ओर से किया गया शब्द मेध हैं। जिस में जड़-पुरातन सामन्तवाद की आहुति देकर जन चेतना के दिग्वीजय की घोषणा की है। उनका यह प्रगतिवाद सबसे पहले मानवीय है, फिर राष्ट्रीय।

जन पीड़ा और सामाजिक असंतोष ही उनके लेखन के प्रधान अनुभव हैं। जिस में पीड़ित मानवता के शोषण और अत्याचार के खिलाफ मोर्चाबंदी है। उन्होंने पंडिताऊ या वक्तकाटू साहित्य नहीं लिखा है। बल्कि व्यक्तिगत घटनाओं को भी सामाजिक आकार देकर पेश करते है। देश की गरीबी, भुखमरी, अकाल, बाढ, राजनीतिक पंडागिरी और भोली-भाली जनता की निरंतर उपेक्षा से नागार्जुन का मन अपने साहित्य में बेचैन है। इन्हीं समस्याओं से बार-बार टकराते हुए आम जनता को उठने-जागने और जागकर संगठित होने की प्रेरणा देकर लड़ने का संदेश देते रहे है। जरुरत पड़ी तो खुद भी उसका नेतृत्व किया है। साधे परिवेश के नागार्जुन की दृष्टि विज्ञान-सम्मत होने से वर्गहीन समाजवादी समाज की रचना करना चाहते है।

समाज हित के लिए सदा चिन्तनशील और संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी नागार्जुन के मन में भ्रष्टाचार, राजनीतिक आडम्बर और रुढ़ियों के खिलाफ आक्रोश है। पूँजीवादी और साम्राज्यवादी शक्तियों से इनका बैर है। उनके साहित्य में व्यक्त व्यंग्य, आक्रोश, विद्रोही वृत्ति, खरी-पैनी बात सुनाना, दलित समुदाय के प्रति सहानुभूति नागार्जुन के जीवन में आये अभावों और अनुभवों की ही प्रतिक्रिया है। पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं ने उन्हें अनुभूति दी और मैथिली, संस्कृत और हिन्दी के ज्ञान ने सशक्त अभिव्यक्ति। ऐसे महान प्रतिभाशाली साहित्यिक को हिन्दी में घोर उपेक्षा और असहिष्णुता का सामना करना पड़ा।

नागार्जुन की रचनाएँ उबड-खाबड़ लगती है, पर चट्टान की भाँति मजबूत है। भविष्य में जब कभी अराष्ट्रीयता, भ्रष्टाचार, दिवालियापन, शोषण का वातावरण होगा नागार्जुन की रचनाएँ अगली पीढियों के काम आकर स्वत्व की रक्षा और उसके लिए संघर्ष करने को उकसाती रहेंगी। ऐसे कालजयी साहित्यकार के रुप में नागार्जुन अमर ही रहेंगे और अपनी रचनाओं के प्रत्यक्ष उदाहरण से प्रेरक और गुरु होंगे। आज भी नागार्जुन के दहकते साहित्यिक व्यक्तित्व में परिवर्तन तथा शिथिलता नहीं आई है तो वह पुरानी तड़प और आग वैसी ही है। नागार्जुन ने जो सहा है उसके कारण शब्दों को सामर्थ्य और व्यक्तित्व में निखार आया है, जो अद्वितीय है। फलतः आज बुढ़ापे में भी इस धरती पुत्र का पसीना भट्टियों के समान ललकारता हुआ खड़ा है।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि सबल व्यक्तित्व के धनी नागार्जुन मनमौजी स्वभाव के रहे। उनके साहित्य की जीवन पध्दति संयम और अराजकता, प्रगतिवाद और राष्ट्रवाद के समन्वय की रही है। उन्होंने वर्तमान शासक वर्ग की पोल खोलकर उनके अत्याचार और निकम्मेपन को स्पष्टता से उजागर किया है। सशक्त लेखनी के धनी नागार्जुन की प्राणवंत प्रखर प्रतिभा भारत के सर्वहारा वर्ग को दीपस्तंभ के रुप में संगठन, संघर्ष और उन्नति का संदेश देती रही हैं।

नागार्जुन का कृतित्व :

नागार्जुन की बहुमुखी प्रतिभा, व्यक्तित्व की अनेक रुपता और बहुभाषिकत्व की तरह उनका साहित्यिक कृतित्व भी बहुविधात्मक है। काव्य, काव्य संकलन, लघुकाव्य, खण्डकाव्य, उपन्यास, बाल साहित्य, बाल जीवनी, निबंध, लघुप्रबन्ध, अनुवाद, पत्र-पत्रिकाओंका संपादन आदि विविध विधाओंपर मैथिली, संस्कृत और हिन्दी में उन्होंने अपनो लेखनी समान रुप से चलायी हैं। हम पहले उनके औपन्यासिक कृतित्व का परिचय प्राप्त करेंगे, कारण हमारे लघु-शोध-प्रबंध का संबंध उपन्यास में ही चित्रित निम्न-वर्ग के साथ है। नागार्जुन का औपन्यासिक कृतित्व इस प्रकार हैं।

उपन्यास :

नागार्जुन का औपन्यासिक कृतित्व विस्तृत है, जिसमें मिथिला की धरती और समाज सुधार के संकेत विद्यमान हैं। आँचालिक उपन्यासकार के नाते अंचल के जीवन की विविधता और समग्रता के साथ लोक संस्कृति, प्रथाओं, परम्पराओं, जीवन विधियों, रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों का सूक्ष्म वर्णन कर लोकजीवन का चित्र साकार किया है। कहीं-कहीं निजी जीवन के कुछ तथ्यों का समावेश हो गया हैं। साथ ही शोषित तथा निम्न वर्ग के प्रति लेखक के मन की गहरी संवेदना और शोषितों के खिलाफ तीव्र आक्रोंश से किसान-मजदूर के संगठन की प्रेरणा और समाजवादी समाजनिर्मिती का आशावाद है। "शोषण एवं वर्ग-वैषम्य का अन्त होना यही उनके उपन्यासोंका मूल स्वर है। ---- और जिसके सफल होनें से ग्रामों की रुढ़ियो एवं जर्जरित मान्यताएँ समाप्त होंगी और समाजवादी ग्राम-समाज की नव रचना होगी।"[14] नागार्जुन के उपन्यासों में सस्ते मनोरंजन के प्रेम प्रसंग नहीं मिलते। "जहाँ केवल "प्यार" ही नहीं, समूचा जीवन ही जिन्दा लाश की तरह जी रहा है।"[15] लेकिन नागार्जुन निराशावादी उपन्यासकार नहीं है उनके प्रत्येक उपन्यास में ग्राम-जीवन की दुःखद रेखाएँ करवटें बदलती हुई दिखाई देती है। नागार्जुन के हिन्दी में प्रकाशित उपन्यास इस प्रकार हैं -

रतिनाथ की चाची - (1948) :

उपन्यासकार ने ही इसकी भूमिका में स्पष्ट किया है - 'रतिनाथ की चाची' की भाव-भूमि दरभंगा-जनपद के एक अंचल में सीमित थी। कथाकाल 1937 और 1940 के मध्ये का

था।"[16] इस उपन्यास में विधवा गौरी देवी को किस प्रकार समाज के अपमान, अत्याचार और संघर्ष का सामना करना पड़ता है, इसका बड़ा करुण और सजीव चित्र साकार हुआ है। कथानक नागार्जुन की बचपन की स्मृतियों के आधार पर है, उपन्यास का रतिनाथ स्वयं नागार्जुन हैं और उनके जीवन की घटनाएँ रतिनाथ के जीवन से संबधित है। चाची का असहाय वैधव्य जीवन-राते के पिता जयनाथ का उग्र स्वभाव-रतिनाथ के पिता द्वारा चाची का गर्भवती होना-भ्रूण हत्या की घटनाएँ है। गौरी समाज की ही भर्त्सना का पात्र नहीं बनती तो उसकी पूत्र वधु भी उसे अपमान एवं घृणा की नजर से देखती है। अपने परिवार में ही उपेक्षित होने से चाची जीवन का मोह छोड़ती है।

चाची रुढ़िग्रस्त समाज की विधवा नारी होकर भी विचारों सें प्रगतिशाल तथा राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित हैं। उसका विवश होकर अनचाहे अनैतिक संबंधों का शिकार होना नैतिकता और सामाजिक दृष्टि से अपराध है, फिरभी चाची देवर को कलंकित नहीं होने देती। शील और शालीनता की प्रतिमूर्ति चाची समूचा अपयश, तिरस्कार और नींदा का बोझ अपने ऊपर लेती है। वह कहती है "मैं और कुछ नहीं जानती। वह भादों का महिना था। अमावस की रात थी। एक घनी और अँधेरी छाया मेरे बिस्तरे की तरफ बढ़ आयी। उसके बाद क्या हुआ, इस बात का होश अपने को नहीं रहा---।"[17] गौरी का सारा जीवन विवशता, अपमान, दु:ख-दर्द से भरा है जो कभी भुलाये भी भुला नहीं सकता। सामाजिक बुराईयों में पिसती हुई भी गौरी चाची विरोध व्यक्त न कर अपनी दुर्दशा का हल मृत्यु में पाती देखकर हमें बड़ा रहम आता है और हृदय विधवा नारी के प्रति श्रध्दा और सहानुभूति से भर उठता है।

बलचनमा (1952) :

"बलचनमा" मूलतः नागार्जुन के मैथिली उपन्यास "बलचनमा" का हिंदी रुपान्तर है। "बलचनमा" नागार्जुन की उपन्यास कला का कीर्तिस्तंभ है। वह नागार्जुन का आदर्श मानस पुत्र है। गरीबी की मार सहने वाले लेखक की समाज विषमता की सूक्ष्म जानकारी है। कथावस्तु के लिए घटनास्थल जिला दरभंगा-बिहार और घटनाकाल 1937 ई. के शुरु का है। जिसमें निम्नवर्गीय श्रमजीवी किसान पुत्र के दु:ख और संघर्ष का वर्णन कर परम्परा, वर्ग व्यवस्था और शोषण पर प्रहार किया गया है।

बचपन से भैंस चराने का काम करनेवाला बलचनमा फूलबाबू के साथ पटना जाता है। फूल बाबू के गांधीवादी बननेपर गाँव लौटना है। जमींदार मालिक उसकी बहन रेबनी को वासना का शिकार बनाने के लिए उसके साथ छेड़खानी करता है। बड़ा हल्ला मचता है। बलचनमा के खिलाफ चोरी की झूठी रिपोर्ट थाने में की जाती है। जमींदार किसानों को भूमि से वंचित करना चाहते है,

बलचनमा समुहिक संघर्ष करता है। जमींदार के आदमी उस पर बुरी तरह हमला करते है और वह बेसुध होता है। इस कथानक से स्पष्ट होता है कि यह उपन्यास भारतीय गरीब किसानोंपर होने वाले अत्याचारों का वास्तव एवं मार्मिक चित्रण और वर्ग संघर्ष की वाणी है। बलचनमा के रुप में नागार्जुन ने एक वामपंथी चरित्र ही साकार किया है। उसमें विद्रोह की आग है, बाहुबल पर विश्वास है। वह भाग्य को कोसते हुए हतबल नहीं होता है तो लड़कर अपने अधिकार लेना चाहता है। पुरे उपन्यास में किसान का दु:ख-दर्द और संघर्ष व्याप्त है। नागार्जुन ने कृषकों की दुखती रग को बारीकी से पहचानकर उन्हें 'उठो! अपने को पहचानो ओर विरोधी परिस्थितियों को परिवर्तित कर नया समाज बनाओं का नारा लगया हैं। सही रुप में बलचनमा निम्नवर्गीय चेतना का जागृत प्रतिनिधि है।

नई पौध - (1953) :

'नई पौध' नागार्जुन के मैथिली उपन्यास 'नवतुरिया' का हिन्दी रुपान्तर है। 'नई पौध' बिसेसरी के अनमेल विवाह की घटनापर आधारित मिथिला में व्याप्त कुरीतियों का चित्रण करनेवाला एक आंचलिक उपन्यास है। नई पौध याने देशकी नई फसल। नई फसल का तात्पर्य है कि स्वतंत्रता के पश्चात् उभरनेवाली नई पीढ़ी।

मिथिला में सौराठ के मेले में विवाह के इच्छुक वर एकत्र होते हैं और वहीं लड़कियों के अभिभावक अपनी कन्याओं के लिए वर का चयन करते है। बिसेसरी के पिताजी का देहान्त होने से वह नाना खोंखा पंडित की आश्रीत है। लालची खोंखा पंडित पैसों के लिए अपनी छः लड़कियों को बेचे हुए हैं। अपनी नतनी बिसेसरी का विवाह भी एक हजार रुपयों के लालच में चतुरानन चौधरी के साथ करने को तैयार हो जाते है। चतुरानन चौधरी की उम्र साठ साल के ऊपर है, जो तीन पत्नियों के पति और पाँच बच्चों के पिता है। किन्तु गाँव के बमपार्टी के विद्रोही नवयुवक इस विवाह को होने नहीं देते। युवकों का नेता दिगम्बर वाचस्पति बिसेसरी के साथ विवाह करता है और नई पौध के विजय की घोषणा करता है।

'नई पौध' में नागार्जुन ने नवीन मानवीय मूल्योंपर आधारित सामाजिक चेतना का अवाहन कर युवा मानस को नया संदेश दिया है। 'नई पौध' खोखली और सड़ी गली परम्पराओं पर नई पीढ़ी की विजय है और समाजवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता हैं।'[18] लेखक ने युवा पाढ़ी की शक्ति को पहचान कर उसका विधायक उपयोग किया है।

बाबा बटेसरनाथ (1954) :

'बाबा बटेसरनाथ' नागार्जुन का आत्मनिवेदन होकर एक प्रयोग धर्मी उपन्यास है। जिसमें वटवृक्ष के मानवीकरण द्वारा उत्तर बिहार के रुपउली गाँव की चार पीढ़ियों की कथा वटवृक्ष

BARR. BAL... LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR
SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY

मुँह से कही है। जैकिसुन उपन्यास का श्रोता तथा नायक है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी में जमींदारो द्वारा निर्धन जनता पर किये जानेवाले अत्याचार और शोषण का चित्रण वटवृक्ष के माध्यम से किया हैं। साथ ही अंग्रजों का आतंक और उसके विरुध्द होने वाले स्वतंत्रता आन्दोलन के सजीव चित्रण द्वारा अन्याय के विरुध्द संघर्ष का संदेश भी दिया हैं।

'बाबा बटेसरनाथ' में महारानी विक्टोरिया के युग से लेकर छोड़ो भारत आन्दोलन के साथ आजादी और सन् 1951 के जमींदारो उन्मूलन तक का इतिहास याने एक सामाजिक शिलालेख है। और लेखक के राजनीतिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति भी हुई है। नागार्जुन ने 'बाबा' के द्वारा स्पष्ट किया है कि क्रान्ति केवल एक व्यक्ति से नहीं हो सकती उसे सामुहिक चेतना की जरुरत होती है। इसके लिए वर्तमान समस्याओंका अनुशीलन भूतकालिन घटनाओं के साथ करना चाहिए। 'बाबा' याने लेखक, आशावादी होने से तरुण शक्तिपर भरोसा रखते है। उपन्यास के अन्त में स्वाधीनता, शान्ति और प्रगति के जो नारे लगाए गये हैं उससे लगता है कि नागार्जुन सभी वर्तमान समस्याओंका समाधान साम्यवाद में देखते है। और मानवतावादी दृष्टिसे परमार्थ में ही जीवन की सार्थकता मानते है।

नागार्जुन का यह उपन्यास शिल्प और प्रयोग की दृष्टि से अभिनव है।

वरुण के बेटे (1957) :

यह उपन्यास पहले उपेन्द्रनाथ 'अश्क' द्वारा संपादित 'संकेत' नामक साहित्यिक संकलन में प्रकाशित हुआ बादमें पुस्तकाकार रुपमें 1957 में प्रकाशित किया गया।

'वरुण के बेटे' यह समाजवादी यथार्थवाद का महत्व बतानेवाला एक लघु आँचलिक उपन्यास है। यह बिहार के मलाही-गोंढ़ियारी गाँव के मछुओं के जीवन संघर्षकी करुण कथा है। मछुए 'गढ़-पोखर' से मछलियाँ पकड़कर जीवन यापन पीढ़ियोंसे करते आए हैं। जमींदार ने गढ़-पोखर को दूसरे गाँव के लोगों को बेचने से वे नए खरीददार मछली पकड़ने नहीं देते। मछुए इसका विरोध संगठित होकर करते हैं, और अन्त में पुलिस सबको पकड़ ले जाती है। इस मुख्य कथा के साथ प्रसंगवश मधुरी और मंगल के मधुर प्रेम की कथा भी इसमें एकाकार हो गयी है।

'वरुण के बेटे' उपन्यास वर्ग संघर्ष की अमर कृति है। जिसमें राजनीतिक नेताओं की शोषण वृत्ति और श्रमदान की नाटकीयता पर व्यंग्य किया है। साथ ही जाति-पाति के भेदभाव को हेय समझकर राष्ट्रकी अखण्ड एकता के लिए गरीबों को विभाजित नहीं संगठित होकर रहना चाहिए, और संघर्ष को न ड़रकर वर्गविहीन समाज की रचना करने से देश का कल्याण होगा यह भावना मोहन माँझी के द्वारा व्यक्त हुई है।

दुखमोचन (1957) :

'दुखमोचन' नागार्जुन की एक समाजवादी कृति है। जो प्रकाशन के पूर्व ही आकाशवाणी के लखनऊ-प्रयाग केन्द्रों से 1956 में समग्र रुप से प्रसारित किया था। नागार्जुन ने अपनी यह कृति उन सभी कलाकारों को समर्पित की है, जिनके स्वर-संयोग से यह लाखों श्रोताओं के सामने साकार हो उठी।

'दुखमोचन' टमका-कोईली गांव के नवनिर्माण की कहानी है। कथानक में तीन प्रमुख घटनाओं में गांव में बाढ़ की स्थिति तथा बाढ़ पीड़ितों की सहायता, गांव में पक्की सड़क का निर्माण, गांव में आगमें जल गए मकानों का पुनःनिर्माण आदि प्रमुख हैं। साथ ही माया और कपिल के प्रेम-प्रसंग की भी झलक है। गाँव के भौतिक नवनिर्माण के साथ गाँव के लोगों के मन, भावना और विश्वास का भी नवनिर्माण है। जिसके लिए रुढ़ियों का विरोध और प्रगतिशील विचारों का स्वागत किया है। उपन्यास का नायक दुखमोचन लोकनायक के रुप में साकार होकर उस पर आदर्शवाद, यथार्थवाद और गांधीवादी प्रभाव है। "दुखमोचन में परदुखकातरता के साथ गहरी मानवीयता है, मानवता के प्रति गहरी आस्था है। वह शक्ति, शील एवं सौन्दर्य का मूर्तिमंत रुप है।"[19]

उपन्यास में श्रमभावना "श्रम यज्ञ" के रुप में आयी है। साथ ही सार्वजनीन वस्तुयें हड़प करने की लागोंकी स्वार्थी प्रवृति और शासकीय कर्मचारियों की लालफीताशाही पर व्यंग्य भी हैं। लेकिन प्रचारात्मकता और आदर्शवाद की अधिकता होने से दुखमोचन व्यक्ति के बजाय "टाइप" बन गया है। जो सरकारी विकास कार्य का प्रवक्ता लगता है।

कुंभीपाक (1960) :

यह उपन्यास "चम्पा" नामक पाकेट बुक्स में भी प्रकाशित हुआ है। 'कुम्भीपाक' याने हिन्दुओं में एक ऐसा नर्क माना जाता है जहाँ पापी मृत्यु के बाद जाता है। समाज के कुंठाग्रस्त तबियत के लोगों ने अपने मनोरंजन के लिए कितनी युवतियों को अपनी वासना का शिकार बनाकर जीते-जी कुंभीपाक में ड़ाल दिया है, उसका यहाँ वर्णन हैं। "कुंभीपाक" उपन्यास व्याप्त वेश्यावृति का अभिशाप है। स्वयं नागार्जुन का कथन है कि "कथावस्तु के नामपर एक नारी की कहानी है जो 19 वर्ष की आयु में विधवा हो चुकी है। चार महीने के गर्भ को गिराने के लिए कोई रिश्तेदार आसनसोल ले जाता है और धर्मशाला में अकेली छोड़कर खिसक आया। तब से दो वर्ष इन्दिरा के कैसे कटे हैं, यह बात धरती जानती होगी या आसमान जानता होगा।"[20]. भारतीय नारी वासनावृति के लोगों के जुल्म का शिकार बन मृत्यु-पर्यन्त नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर होती हुई कैसे टूटती चली जाती है, यही उपन्यास की मूल प्रेरणा है।

अपना सम्मान, अपना शरीर और अपना स्तर बेचने के लिए मजबूर नारियों को इस कुम्भीपाक से बाहर आने के लिए श्रमजीवी मार्ग ही सही मार्ग उपन्यासकार ने सुझाया है। और ऐसे सम्मानपूर्वक जीने का उदाहरण है चम्पा और भुवन का। वासना का यह ताण्डव केवल देहातों में ही नहीं तो महानगरों में भी ऐसी हीनता, कुंठा और पीड़ा की भरमार हैं। लेखक ने ग्राम और शहर की समस्याओंका समन्वय किया है। नारी जीवन में श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरुचि के समन्वय द्वारा नारी प्रबोधन को शक्ति देकर आर्थिक स्वावलम्बन ही इन समस्याओं पर उपाय बताया है।

उपन्यास की शिल्पविधि वर्णनात्मक होकर भी कथानक में शिथिलता नहीं आ पायी है।

हीरक जयंती (1962) अभिनन्दन (1979) :

'हीरक जयंती' उपन्यास ही 'अभिनन्दन' नाम से वाणी प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

'हीरक जयंती' हमारी सामाजिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक नेताओंके ढोंगभरी जिन्दगी पर तीव्र प्रहार करनेवाली नागार्जुन की सशक्त व्यंग्य कृति है। जिसमें एक भ्रष्ट काँग्रसी मंत्री नरपत नारायण सिंह "बाबूजी" के हीरक जयंती का आयोजन उनके स्वार्थी तथा लाचार भक्तों द्वारा किया जाता है। समारोह के वक्त एक फोन आता है कि बाबूजी का लड़का नगेन्दर पुलिस की कस्टड़ी में है। कारण उसने ट्रक में तम्बाकू के नीचे पच्चीस मन गांजा छिपाया था, आबकारी अधिकारियों ने ट्रक रोककर नेतापूत्र को पकड़ा था। बाबूजी अपना राजनीतिक प्रभाव ड़ालकर बेटे को छुडवा लेते है। उसी समय दूसरी एक घटना घटती है कि मंत्रीजी की पूत्री मृदुला अपनी माँ के गहने और पांच हजार रुपये लेकर अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है। इस प्रकार पिता की 'हीरक जयंती' हुई और पुत्रीकी 'ताम्र जयंती।'

यह उपन्यास भ्रष्ट नेताओं और उनके अनुयायियों के तिकड़म, सामान्य जन को मूर्ख बनाने की कला एवं बुरे मार्ग से धन अर्जित करने और पद पाने का प्रमाणिक आलेखन है। हमारी प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली भ्रष्ट नेतृत्व से त्रस्त है। इनकी कथनी और करनी में अन्तर है। इन नेताओंका व्यक्तिगत जीवन भी अनैतिकता की वासना से भरा है यह लेखकने मंजुमुखी देवी के द्वारा स्पष्ट किया है। जनसामान्य का पैसा मंत्रियों के अभिनंदन, हीरक जयंती, थैली भेंट, स्वागत समारोह में बरबाद कर प्रजातंत्र शासन में मंत्रीगण मौज उड़ाते हैं। इस कारण नागार्जुन प्रजातंत्र का विरोध कर समाजवादी शासन व्यवस्था का समर्थन करते हैं।

वर्तमान राजनीतिका भंड़ा फोड़ करनेवाला 'हिरक जयंती' उपन्यास एक प्रकारका रिपोर्ताज हो गया है।

उग्रतारा - (1963) :

'उग्रतारा' समाज द्वारा पीड़ित विवश उगनी की दर्दभरी और संघर्षभरी कहानी है। उपन्यासकार के अनुसार 'उग्रतारा' का कथानक वास्तविक और कल्पनिक हैं।

'उग्रतारा' बाल विधवा उगनी और उसके विधुर प्रियकर कामेश्वर की प्रेम और संघर्ष की कहानी है। दोनों शादी करके सुखी जीवन बिताने के इरादे से गाँव से भाग जाते हैं लेकिन पुलिस द्वारा जेल में भेज दिए जाते हैं। जल्दी रिहा होनेसे उगनी सिपाही भभीखन सिंह के चंगुल में फँसती है। सिपाही उसके साथ जबरदस्ती से विवाह कर लेता है, जिस विवाह को उगनी बलात्कार ही मानती थी। उसे सिपाही के रुप में घरवाला जरुर मिला था परन्तु पति मात्र नहीं। अब भभीखान सिंह के बच्चे की माँ बननेवाली उगनी कमेश्वर के लायक नहीं रही थी। लेकिन कमेश्वर उगनी को इस नरकतुल्य जीवन से बाहर निकालनेका निश्चय करता है। 'कामेश्वर नये भारत का नया युवक है, पुराने ढंग का छिछोर नौजवान नहीं है।'[21] दोनों पुर्नविवाह करते हैं। 'आज एक पुरुष ने गर्भिणी नारी के सीमान्त में सिन्दूर भरा था। धोके में? नहीं, जान बूझकर।'[22] उगनी को अपनी पसंद का युवक पति मिल गया था। कारण उसने सिपाही को मनसे कबूल नहीं किया था। भंग की बर्फी धोके से खिलाकर ही उसके साथ शारीरिक संबंध किया था। फिर भी सिपाही के बच्चे को पाल-पोसकर उसके हवाले करना चाहती है।

'उग्रतारा' याने असहाय और विवश उगनी की करुण कथा का जीवन्त चित्रण हैं। समाज में व्याप्त बलात्कार और व्याभिचार के खिलाफ आदर्शवादी तथा अनुकरणीय कामेश्वर जैसे युवक द्वारा सामाजिक क्रान्ति की राह उपन्यासकार ने निश्चित की है। साथ ही छिछोर मनका इलाज कारतूस की पेटियों से नहीं तो स्त्री-पुरुष में समान समझदारी से और मनोरंजन के साधनों से होगा और व्यभिचार घटेगा यह दिखाया है।

इमरतिया (1968) - जमनिया का बाबा (1968) :

नागार्जुन का एक ही उपन्यास 'इमरतिया' तथा 'जमनिया का बाबा' दो नामों से प्रकाशित हुआ है। यह दोनों उपन्यास कहकर लिखाये गए है। प्रकाशक अलग-अलग होने से दोनों की कहानी एक होते हुए भी परिच्छेदों का क्रम मात्र बदल गया है। उपन्यास का कथानक नागार्जुन के जीवन में घटित घटना से संबंधित है। इस उपन्यास में साधुओं की अनैतिकता और मठों-आश्रमों के धार्मिक आडम्बरों की चिकित्सा की हैं। उपन्यास का प्रमुख पात्र 'बाबा' है। और नायिका इमरतिया जो ठगों, अपराधियों और गंजेड़ी साधुओं के कुचक्र में फँसी एक साहसी और भावूक स्त्री है। बदमाशों के साथ रहने से उसमें भीअपराधवृति निर्माण हो गयी है जो स्वाभाविक लगती है।

उपन्यासकार नागार्जुन ने मस्तराम के द्वारा हरिजनों और गरीबों के प्रति अपनी सहानुभूति जताकर पूँजीपतियों के निर्दयता की हँसी उड़ायी है। हिन्दूओं में जतिगत भेद-भाव होने से सामाजिक एकता खत्म होकर असंतोष निर्माण होता है। फलतः धर्मान्तर की प्रवृत्ति बढ़ रही है इस गंभीर प्रश्न को उपन्यास में उठाता है। समस्या के समाधान रुप में नागार्जुन की राय है कि कोई व्यक्ति सदाही अस्पृश्य नहीं होती। स्नान करने से मेहतर भी हमारे समान ही होता है, अतः यह जतिय भेद निराधार और निरुपयोगी हैं। दोनों उपन्यासों के परिच्छेद का क्रम अलग होते हुए भी कथा-प्रवाह में कोई शिथिलता तथा बाधा नहीं आयी हैं।

पारो - (1975) :

नागार्जुन के मैथिलो उपन्यास 'पारो' का कुलानंद मिश्र द्वारा हिन्दी अनुवाद ही 'पारो' उपन्यास है। इसमें अनमेल विवाह के परिणाम तथा बिहार के पिछड़े हुए मैथिल अंचलों में स्थित विवाह के गलतपरम्पराओं की कड़ी आलोच्ना है। विवाह के लिए वहाँ 'सोराठ' का मेला लगता है। विवाह के मध्यस्त 'घटक' और 'पंजीकार' लालची और भ्रष्टाचारी होने से धन के मोह में कसाई नीति से अनमेल विवाह कर लड़की के जीवन का हलाल सहजतासे करते हैं।

'पारो' उपन्यास की नायिका पितृहीन पार्वती को भी मजबूरी से पैंतालिस वर्षीय चुल्हाई चौधरी से शादी करनी पड़ती है। उम्र का सामंजस्य न होने से पति पार्वती को न मानसिक तथा न शारीरिक समाधान दे पाता है। ऐसे पति को पार्वती 'पति' मानने के लिए ही तैयार नहीं है। अतः विवाह के बंधन तोड़ देती है। वह भगवान से प्रार्थना करती है - 'हे भगवान! लाख दण्ड दे मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दे ----।'[23] पार्वती को मृत्युकी प्रतीक्षा कर अपने दुःखमय जीवन का अंत मृत्यु में ही करना पड़ता है।

'पारो' उपन्यास शताब्दियोंसे पुरुषी अत्याचारों से त्रस्त नारी हृदय की जीवन्त वेदना या करुण कहानी है। उपन्यासकार की पार्वती भारतीय परम्परावादी पत्नी की तरह पति को परमेश्वर मानकर समझौता नहीं करती। वह अनमेल विवाह का शिकार बनाने की अपेक्षा युवतियों को जहर देना ठीक समझती है। उसका यह विचार परम्परावादी भक्तों के मुँहपर करारी चापट ही है।

निष्कर्ष-उपर्युक्त विवेचित उपन्यासों के अध्ययन से पता चलता है कि नागार्जुन के उपन्यासों में लोक-कल्याण की भावना नींव स्वरुप है। उन्होंने अपने जीवन में जो देखा, जाना और भोगा उसे ही अपनी कलमद्वारा उपन्यास में कुशलता से अक्षरबध्द किया है और उससे सामाजिक बुराइयों के विरुध्द वातावरण का निर्माण किया है। उनके सारे उपन्यासोंका कथा क्षेत्र मिथिलांचल है, और अंचल विशेष के जन-जीवन चित्रण की खुबी और यथार्थवादी शैली के कारण नागार्जुन अग्रगण्य तथा सफल

आंचलिक उपन्यासकार के रुपमें अपना स्थान तय किये हुए है।

नागार्जुन ने उपन्यास विधा के समान अन्य साहित्यिक विधाओंपर भी अपनी लेखनी कुशलता से चलयी है। लेकिन हमारे प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबन्ध का विषय उनके उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग होने के कारण अन्य विधाके कृतियों का सिर्फ नानोल्लेख कर रहे हैं -

हिन्दी काव्य संकलन :

खिचड़ी विप्लव देखा हमने, युगधारा, सतरंगे पंखोंवाली, प्यासी पथराई आंखें, तालाब की मछलियाँ, तुमने कहा था, हजार हजार बाँहोंवाली, पुरानी जूतियों का कोरस, प्रेत का बयान, शपथ, खून और शोले, चना जोर गरम।

मैथिली काव्य संकलन :

चित्रा, पत्रहीन नग्न गाछ (के लिए 1969 ई.में. साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत)

हिन्दी में खण्डकाव्य :

भस्मांकुर

मैथिली में उपन्यास :

पारो, बलचनमा, नवतुरिया।

सिंहली लिपि में संस्कृत भाषा का लघुकाव्य :

धर्मलोक शतकम्

संस्कृत में कविताएँ :

देश-दशकम, कृषक दशकम्, श्रमिक दशकम्।

लघु-प्रबन्ध (निराला पर) ::

एक व्यक्ति : एक युग

स्फुट गद्य संग्रह :

अन्नहीनम् क्रियाहीनम्

कहानी संग्रह :

आसमान में चन्दा तेरे

बाल साहित्य :

अयोध्या का राजा, कथा-मंजरी, रामायण की कथा, वीर विक्रम, बाल जीवनी (प्रेमचंद)

अनुवाद :

कालिदास का मेघदूत, जयदेव का गीत गोविंद, विद्यापति के गीत।

इसतरह नागार्जुन का साहित्य भांडार विस्तृत है।

नागार्जुन : प्रेरणा एवं प्रभाव :

नागार्जुन देखी हुआी दुनिया के लेखक है। पढ़ी और सुनी-सुनाई बातों पर उनका विश्वास नही। इसलिए गाँव और शहरों का निम्न-मध्यम वर्गीय जीवन ही कच्चे माल के रुप में उनके साहित्य की प्रेरणा हैं। बचपन से गरीबी और जीवन भर संघर्ष तथा असुविधा में जीवन जिनेवाले नागार्जुन के दिल में सर्वहराओं के प्रति सहानुभूति और संवेदना बौध्दिक नहीं भावनाजन्य है। अपने परिवेश के साथ हार्दिक धरातल पर एकाकार होने से उत्पन्न सामाजिक करुणा ही उनके साहित्य का मूल स्त्रोत है। देश के प्रति प्रेम होने से अराष्ट्रीय घटनाएँ उन्हें पीड़ा दायक लगती है। परिणामतः स्वदेश और स्वत्व के लिए संघर्ष की भावना ही उन्हें लिखने को मजबूर करती है। घर, परिवार, समाज और देश की जिन समस्याओं में आम जनता पीस रही हैं - जैसे गरीबी, भूखमरी, जमिनों का हड़प लिया जाना, अनमेल विवाह, छोटी जातियोंका शोषण करने के लिए उच्च वर्गीयोंकी चालाखी, दलित और स्त्रियों की सामाजिक उपेक्षा, अन्ध विश्वास और उनकी आड़ में छिपे ढोंगी साधु, अनाथाश्रम रुपी भ्रष्टाचार और अनैतिकता के अड्डे, कॉंगेसी नेताओं की स्वार्थी वृत्ति, उच्चवर्गों के हितों का रक्षण करनेवाला नकली समाजवाद, नेताओंका ढोंग और दिवालियापन, जनतंत्र का सत्तावाद और भ्रष्टाचार से भर जाना, झूठा और वायवी वामपंथ, भ्रष्ट और पतनोन्मुख गांधीवाद आदि न जाने कितनी ऐसी बातें हैं जो नागार्जुन को झकझोर कर सजग और प्रेरित करती है।

नागार्जुन की सृजन धारा लोक चिन्ता और लोक कल्याण का साक्षात रूप है। जनता की आशा और संघर्ष ही उनके साहित्य की आशा और चेतना हैं। आसपास के जीवन में घटित घटनाएँ जो सामाजिक बिमारियों के रुपमें मौजूद है वही नागार्जुन के साहित्य को बल देती रही हैं। 'नागार्जुन की प्रेरणा शिल्प के कौशल से नहीं, वरन् जीवन अनुभवों की गहराई और तिक्तता से शक्ति पाती है। नागार्जुन जन मन के साथ गहरी आत्मीयता और तादात्म्य स्थापित करते हैं, उनकी साहित्यिक शक्ति का यही आधार है।'[24] नागार्जुन साहित्य की प्रेरणा के रुप में उनके व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ भी सामाजिक संदर्भ लेकर पेश हुआी है। 'रतिनाथ की चाची', 'जमनिया का बाबा' और 'पारो' की घटनाएँ उपन्यासकार के जीवन से सीधा संबंध रखती है। नागार्जुन जनता के संघर्ष से जुड़े होने के कारण उनका अपना अलग सुख या अलग जात नहीं है। उनकी कलम एक सच्चे भारतीय सर्वहारा की कलम है अतः जहाँ दुःख, अभाव या पीड़ा हैं वहाँ जाकर बिना बुलाएँ अक्षर खीचने लगती हैं। लेकिन उनकी लेखनी कभी किसी की पालतू बनकर नहीं रही।

लेखक चाहे या न चाहे परिस्थितियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से उसके हृदय को प्रभावित करती ही है। नागार्जुन जिस काल में साहित्य में अवतरित हुए वह काल भारतीय जनता के जागृति का काल था। देश की पराधिनता और उससे मुक्ति के लिए किये जा रहे प्रयासों की प्रतिक्रिया

इस भावुक कलाकार के हृदय पर पड़ी। अपने देश के किसानों की दुर्दशा, जमीदारों के शोषण और अत्याचारों की घटनाओं ने नागार्जुन के हृदय को हिला दिया है। 'रतिनाथ की चाची,' 'बलचनमा,' 'बाबा बटेसरनाथ' आदि में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों और कॉंग्रेसियों के उच्चवर्गीय लोगों से अयोग्य समझौते का चित्रण किया गया है। देश में बाल विवाह, पर्दा-प्रथा, अनमेल विवाह, दहेज, वैधव्य, अशिक्षा के कारण स्त्री का व्यक्तित्व विकास रुक गया था। अतः इस चेतना सपंन्न साहित्यकार ने इन रुढ़ियों के विरुध्द जनता में विचार का प्रसार किया है। उनके 'पारो' और 'नई पौध' उपन्यासों में धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों का चित्रण युगीन प्रभाव को ही स्पष्ट करता है। वस्तुतः युग चेतना का वास्तविक प्रतिबिंब ही उनका साहित्य है।

नागार्जुन देहात में रहने के कारण देहाती जीवन की कठिनाइयाँ और बारीकियोंका उन्होंने निकट से अनुभव किया था। अपनी जन्मभूमि मिथिला के प्रति असीम प्रेम, कालिदास के प्रकृति प्रेम का प्रभाव आदि कारणों से उनकी रचनाओं में देहाती जीवन और प्रकृति का सजीव चित्रण है। उनका संस्कृत, मैथिली और हिन्दी भाषा का परिपक्व ज्ञान भी उन्हें साहित्यिक क्षेत्र में लाने को कारण हुआ हैं। निराला, राहुल सांकृत्यायन, प्रेमचंद आदि के साहित्य का भी नागार्जुन पर प्रभाव पड़ा है। संस्कृत, पालि और प्राकृत ग्रंथों से भी वे प्रभावित रहे हैं। साथ ही समय की आवश्यकता नुसार उन पर साम्यवाद - समाजवादी यथार्थवाद का भी प्रभाव दिखाई देता है। नागार्जुन उन गुमनाम समाजवादी युवकों से भी प्रभावित रहे हैं जो अपने त्याग और सेवा का ढिंढ़ोरा न पीटते हुए नयी समाज रचना में रत हैं। लेकिन नागार्जुन पर अंग्रेजी भाषा, साहित्य और संस्कृति का कोई प्रभाव नही।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नागार्जुन कोरे आदर्श या यथार्थवादी नहीं है। उनके सिध्दान्त एवं विविध विचार-धाराएँ राष्ट्रीय और सांस्कृतिक परंपरामें घुल-मिल गयी है। उनका प्रगतिवाद पहले मानवीय और फिर राष्ट्रीय है। जनता की पीड़ा और सामाजिक असंतोष ही उनके साहित्य के अनुभव हैं। उपेक्षित तथा दलित समुदाय के प्रति जन्मजात सहानुभूति और घनिष्टता के कारण ही विद्रोह उनके साहित्य का अंग बन गया है। नागार्जुन गांधीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे, लेकिन किसान आन्दोलन तक आते-आते स्थिति बदल गयी और उनके ढोंगी चेलोंपर क्रोधित हो गए थे। वामपंथ उनके लिए जन कल्याण के हित झुजने का साधन है और वर्ग विहीन समाज की स्थापना साध्य है। मतलब नागार्जुन में परिवर्तन की गहरी अभिलाषा रही है। उनकी कलम को परिस्थितियाँ ही नही बदलती रही तो वे भी अपनी कलम से परिस्थितियों को बदलने में सक्षम रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. आलोचना 56, पृष्ठ 230, कृष्णा सोबती को दिए साक्षात्कार से
2. अन्नहीनम् क्रियाहीनम् : नागार्जुन,प्र.सं. 1983 (वाणी) पृ. 126
3. साहित्य और सामाजिक संदर्भ : डॉ. शिवकुमार मिश्र. पृ. 122
4. वही, पृ. 123
5. नागार्जुन जीवन और साहित्य : डॉ.प्रकाशचन्द्र भट्ट, प्र.सं. 1974 पृ. 25
6. वही, पृ. 26
7. उपन्यासार नागार्जुन : बाबूराम गुप्त, प्र.सं. 1985 पृ. 12
8. नागार्जुन : सं. सुरेशचन्द्र त्यागी प्र. सं. 1984, पृ. 10
9. वही, पृ. 11
10. आलोचना (56-57) में कृष्णा सोबती से बातचीत पृ. 231
11. आजके लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन : सं. डॉ. प्रभाकर माचवे, पृ. 4-5
12. बाबा नागार्जुन : सं. नरेन्द्र कोहलो प्र. सं. 1987, पृ. 43.
13. नागार्जुन का रचना संसार : विजय बहादुर सिंह, प्र.स. 1982 पृ. 97
14. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास : डॉ. सुरेश सिन्हा, द्वि.सं. 1972, पृ.517
15. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन - डॉ. भारद्वाज , सं. 1969, पृ.235
16. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन प्र. सं. 1985 (वाणी) पृ. 4
17. वही, पृ.10-11
18. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन : डॉ. महावीरमल लोढा: पृ. 84
19. हिन्दी के सात उपन्यास : डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र, प्र.सं. नवम्बर 1977, पृ.129
20. कुम्भीपाक : नागार्जुन तृ.सं. 1978 पृ. 19
21. उग्रतारा : नागार्जुन चौथा सं. 1977 पृ.42
22. वही, चौथा सं. 1977 पृ.97
23. पारो : नागार्जुन हिन्दी रुपान्तर - कुलानंद मिश्र प्र.सं.1975, पृ. 82
24. आजका हिन्दी साहित्य : प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त पृ. 49